THE TIMES OF INDIA

Date: 22-06-26

Smell Test

Spurious nutritional claims on packaged food can hurt consumers' health. FSSAI must stay on top of them

TOI Editorial

A 250ml cup of sugarcane juice can naturally contain over 5 teaspoons of sugar. If you add mango pulp to this juice, and sell the combo as mango juice "with no added sugar", are you being economical with the truth? That's one of the questions India's food safety regulator, FSSAI, is looking into. Among other flags it has raised this time are foods labelled "natural", "healthy", "heart-friendly", etc, without evidence.

But the problem with FSSAI's campaign against false or misleading health labels is its whack-a-mole approach. It must spot specific product-level violations, and then investigate them individually. When there are thousands of brands of biscuits alone, this approach is too slow to keep up with misselling across the industry. So, what's needed are clear guidelines about ingredients and claims that cannot be questioned, or exploited as loopholes.

In a country with over 100mn diabetics, and more than twice as many overweight or obese, health consciousness is on the rise. That's why selling processed food on spurious claims of wholesomeness is growing. Even the West isn't immune to such tricks, although it's got a handle on them now. Back in 2006, sodas, chips, ice cream and cookies were being sold as "100% natural" in US. One pitch, especially, raised eyebrows: 7Up claiming to be a natural drink, despite containing high-fructose corn syrup.

Health should always be non-negotiable, and when it comes to food, consumers must have a clear picture of ingredients and their effects. That's why red herrings – for example, ultraprocessed cereal with high amounts of fat, salt and sugar, but labelled "gluten-free" – should be strictly no-no. False halos, based on unverifiable claims, should be pulled down. While clear guidelines are a first step in this direction, FSSAI should work with bona fide activists and influencers trying to expose the food industry's malpractices. This fight needs more hands.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-06-26

Fix Our Boulevard of Broken Pavements

ET Editorial

Last week, Supreme Court recognised walking on footpaths as a fundamental right, urging the government to introduce a law to bring this right into effect. The court reacted to the death of a 5-yr-old boy run over by a truck in Karnataka because there was no demarcated space to walk. The bench held that the right to walk flows primarily from freedom of movement guaranteed under Article 19 and 21 of the Constitution. But paper must be converted to pavement. Footpaths in Indian cities remain treacherous—broken, encroached, neglected, or non-existent. A society should be judged not just by its flyovers or malls, but by the dignity of its most basic infrastructure. The footpath is the true test of civic culture, and India is failing it badly.

Encroachments by shops and parked vehicles and even invading 2-wheelers force citizens on to roads, where they are treated as obstacles. Disrepair—missing slabs, open drains, uneven surfaces—makes walking especially unsafe for the elderly, children and the disabled. The problem is compounded by cultural complacency. The shrugging 'We are like this only' attitude normalises our (non-)pedestrian attitude to city walking and makes it seem inevitable. It is not. The well-off rarely walk outdoors, making their absence in these public spaces result in little pressure to improve them.

India cannot claim to aspire to becoming viksit without tending to its citizenry's 'ease of walking'. On the part of its citizenry, it must recognise that footpaths serve a function and aren't there just for décor. A society that allows footpaths to lose their veneer of civilisation, and lets them devolve towards anarchic paths, cannot claim progress. The court has handed down a principle. Now we need pavements to match.

दैनिक जागरण

Date: 22-06-26

स्वदेशी सैन्य शक्ति

संपादकीय

प्रधानमंत्री ने कोलकाता के श्यामा प्रसाद मुखर्जी बंदरगाह पर जिन तीन नौसैनिक जहाजों आइएनएस दूनागिरि, आइएनएस संशोधक और आइएनएस अग्रय का शुभारंभ किया, उनकी विशेषता यह है कि वे स्वदेशी रूप से डिजाइन और निर्मित हैं। नि:संदेह यह एक उपलब्धि है और इस बात को रेखांकित करती है कि भारत को रक्षा क्षेत्र में अब केवल खरीदार बनकर नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे अपनी आवश्यकता की अधिकाधिक रक्षा सामग्री

का उत्पादन देश में ही करना होगा। यह इसलिए आवश्यक है कि वर्तमान में किसी भी देश की सैन्य शक्ति का आकलन केवल इससे नहीं किया जाता कि उसके पास कैसे और कितने हथियार हैं, बल्कि इससे अधिक किया जाता है कि वह अपने स्तर पर रक्षा सामग्री का कितना अधिक निर्माण करता है?

यदि भारत को आत्मनिर्भर बनना है तो उसके दायरे में रक्षा सामग्री अनिवार्य रूप से आनी चाहिए। यह ठीक नहीं कि भारत अभी भी रक्षा सामग्री के एक प्रमुख आयातक देश के रूप में जाना जाता है। अच्छी बात यह है कि धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। यह महत्वपूर्ण है कि पिछले कुछ वर्षों में 40 से अधिक स्वदेश निर्मित युद्धपोत और पनडुब्बियां भारतीय नौसेना में शामिल की गई हैं। एक समय ऐसा था जब भारत अपनी हर छोटी-बड़ी रक्षा सामग्री का आयात करता था। इससे रणनीतिक और सुरक्षा संबंधी चुनौतियां उत्पन्न होती थीं।

यह उल्लेखनीय है कि पिछले लगभग एक दशक में रक्षा सामग्री के स्वदेश में निर्माण को बल मिला है। इसके चलते देश में रक्षा उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। जहां 2014 में भारत का कुल रक्षा उत्पादन 40 हजार करोड़ रुपये था, वहीं अब यह बढ़कर 1.8 लाख करोड़ रुपये हो गया है। यह रक्षा सामग्री के मामले में आत्मनिर्भरता को रेखांकित तो करता है, लेकिन अभी बहुत कुछ हासिल करना शेष है। कुछ समय पहले तक भारत में ज्यादातर रक्षा सामग्री का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में होता था। इसके चलते रक्षा सामग्री के उत्पादन की गति धीमी थी और उन्नत रक्षा सामग्री का निर्माण भी नहीं हो पाता था।

यह अच्छा हुआ कि रक्षा सामग्री के निर्माण में निजी क्षेत्र का भी योगदान लेना शुरू किया गया। इसका परिणाम यह है कि पिछले कुछ वर्षों में भारत का रक्षा निर्यात भी बढ़ा है और वर्तमान में यह 38 हजार करोड़ तक पहुंच गया है। अब भारतीय रक्षा उत्पाद विश्व के करीब 80 देशों में निर्यात किए जाते हैं। यह ठीक है कि 2029 तक रक्षा निर्यात को 50 हजार करोड़ रुपये तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है, लेकिन यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि देश में रक्षा सामग्री के उत्पादन की कई परियोजनाएं लंबित चल रही हैं। इनके कारणों की पहचान कर उनका प्राथमिकता के आधार निवारण किया जाना चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-06-26

कुछ राजनीतिक दलों में क्यों होती है टूट

संपादकीय

व्यापक दलबदल के इस दौर में जब सभी दलबदल करने वाले भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की ओर रुख कर रहे हैं तब तीन ऐसे राजनीतिक प्रश्न उठते हैं जो आपस में संबद्ध हैं। राजनीतिक दल क्यों टूटते हैं ? लोग दलबदल क्यों करते हैं ? क्या विचारधारा, सिद्धांत और यहां तक कि निष्ठा की कोई अहमियत है?

इन प्रश्नों के साथ एक बुनियादी तार्किक सवाल पैदा होता है। आखिर क्यों कुछ दल टूट जाते हैं या बुरी तरह छिन्न- भिन्न हो जाते हैं जबकि अन्य दल नहीं टूटते हाल के दिनों की बात करें तो ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) का पतन या कहें भीतर से हुई बगावत सबसे बड़ी सुर्खी रही है। लेकिन यहां भी प्रतिस्पर्धा है। उद्धव ठाकरे वाली शिवसेना (यूबीटी) का शेष हिस्सा फिर से टूट रहा है। झारखंड में 'इंडिया' गठबंधन के विधायकों ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) समर्थित निर्दलीय राज्य सभा उम्मीदवार परिमल नाथवानी के लिए क्रॉसवोट किया। कांग्रेस को कुछ सांत्वना डीके शिवकुमार से मिल सकती है जिन्होंने कर्नाटक के एमएलसी चुनाव में राजग से कुछ को क्रॉसबोट कराया।

आम आदमी पार्टी पहले ही सात सांसद खो चुकी है। बीजू जनता दल ने तीन सांसदों को भाजपा / राजग की झोली में डाला है। हाल ही में वाईएस जगन मोहन रेड्डी की वाईएसआरसीपी (युवजन श्रमिक रैयतु कांग्रेस पार्टी) ने भी सदस्य गंवाए हैं और सभी राजग (अर्थात भाजपा) की संख्या से जुड़ गए। शिरोमणि अकाली दल, अपनी धार्मिक एकता और विशिष्ट विचारधारा के बावजूद सदस्यों को बाहर जाने से नहीं रोक पा रहा। इनमें मनप्रीत सिंह बादल भी शामिल हैं। वहीं मनजिंदर सिंह सिरसा अब दिल्ली में मंत्री हैं।

अगर मैं भाजपा में जाने वाले कांग्रेसियों की सूची बनानी शुरू कर दूं तो इस पूरे आलेख की जगह छोटी पड़ जाएगी। इसलिए मैं उन तक सीमित रहूंगा जो भाजपा में मुख्यमंत्री या केंद्रीय मंत्री बने है या कांग्रेस में रहते हुए मुख्यमंत्री रहे हैं।

इस समय भाजपा के तीन मुख्यमंत्री कांग्रेस से आए हुए हैं हिमंत विश्व शर्मा (असम), पेमा खांडू (अरुणाचल प्रदेश) और माणिक साहा (त्रिपुरा) । एन. बीरेन सिंह भी ऐसे ही एक नेता थे जिन्होंने हाल तक मणिपुर पर शासन किया। ये चारों कांग्रेस में महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे थे। मोदी की मंत्रिपरिषद में आप ज्योतिरादित्य सिंधिया, किरेन रिजीजू राव इंदरजीत सिंह, जितिन प्रसाद और रवनीत सिंह बिट्टूको गिन सकते हैं। सिवाय एक के सभी प्रतिष्ठित कांग्रेसी परिवारों से आते हैं। कांग्रेस के पूर्व मुख्यमंत्रियों की सूची बनाएं जिन्होंने भाजपा का दामन थामा तो उनसे एक पूरी फुटबॉल टीम बन जाएगी। कैप्टन अमरिंदर सिंह, पेमा खांडू, अशोक चव्हाण, एसएम. कृष्णा, नारायण दत्त तिवारी, दिगंबर कामत, किरण कुमार रेड्डी, विजय बहुगुणा गिनते जाइए। पेमा खांडू को छोड़कर किसी को भाजपा से विशेष लाभ नहीं मिला सिवाय शायद संरक्षण के या शायद उन्हें नुकसान से बचाव मिला। कहा जाता है। भाजपा एक चुंबक के समान है जहां सभी दलों के पराजित नेता जा पहुंचते हैं। इसके अलावा भाजपा साम, दाम, दंड और भेद का इस्तेमाल करके भी प्रतिद्वंद्वियों को तोड़ती है। वह जिन नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाती है वे सभी भाजपा में जाकर पाक-साफ हो जाते हैं। भाजपा ने बड़े पैमाने पर दलबदल कराने के लिए फूट डालने के सिद्धांत में महारत हासिल कर ली है। दो-तिहाई को साथ ले आओ और कहो कि आप

ही असली पार्टी हैं। इससे दो प्रश्न उठते हैं। पहला, क्या प्रतिद्वंद्वी दलों को तोड़ने की यह प्रवृत्ति केवल अब शुरू हुई है? और दूसरा, जो हमने प्रारंभ में उठाया था कि आखिर क्यों अधिकांश दल टूट जाते हैं या अपनी प्रतिभाओं को खो देते हैं जबकि कुछ अन्य दल नहीं ? कांग्रेस इस खेल की पुरानी उस्ताद रही है। वास्तव में, सुप्रीम कोर्ट के बोम्मई फैसले (11 मार्च, 1994) तक कांग्रेस ने अनुच्छेद 356 का उपयोग प्रतिद्वंद्वी सरकारों को बर्खास्त करने को आम चलन बना दिया था। फर्क यह है कि भाजपा अब अधिग्रहण के माध्यम से विस्तार पर पूरा ध्यान दे रही है। भाजपा यह बहुत बड़े पैमाने पर कर रही है।

दूसरा सवाल यह है कि आखिर क्यों अधिकांश दल टूट जाते हैं लेकिन कुछ नहीं? मैं केवल तीन का नाम लूंगा जो नहीं टूटते भाजपा, अखिलेश यादव की समाजवादी पार्टी और वामपंथी दल वामपंथियों में ट्रॉट्स्की, लेनिन, पेइचिंग और मॉस्को को लेकर कई बहसें और विभाजन हुए लेकिन वे एक मोर्चे में साथ बने रहे। विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता ही वह गोंद है जो दलों को साथ रखती है।

लोक सभा में कांग्रेस का सबसे कमजोर प्रदर्शन 2014 में 44 सीटों का था। 1984 के आम चुनाव में भाजपा दो सीटों पर सिमट गई थी, फिर भी वह एकजुट रही। वास्तव में, पार्टी की स्थापना (मूल रूप से भारतीय जनसंघ) के 75 वर्षों में 2014 तक उसने केवल छह वर्षों तक सत्ता संभाली थी। लेकिन कोई विभाजन नहीं हुआ, और सिर्फ एक महत्त्वपूर्ण दलबदल गुजरात शंकरसिंह वाघेला का हुआ। इसके विपरीत कांग्रेस इतनी बार टूटी कि उनके पास वर्णमाला के अक्षर कम पड़ गए।

भाजपा से भी उल्लेखनीय अलगाव हुए हैं। पहला मामला बलराज मधोक का है जो जम्मू से स्वयंसेवक थे और जिन्होंने पार्टी अध्यक्ष के रूप में भारतीय जनसंघ को 1967 के चुनावों में 35 सीटों के उच्चतम आंकड़े तक पहुंचाया। उनका अपने समकालीन अटल बिहारी बाजपेयी और लाल कृष्ण आडवाणी से टकराव हुआ क्योंकि वे अर्थव्यवस्था के मसले पर जनसंघ को तत्कालीन दक्षिणपंथी विचारधारा वाले अन्य संगठनों मसलन स्वतंत्र पार्टी आदि के साथ लाना चाहते थे। विरोधाभास यह था कि आरएसएस इस मामले में गांधीवाद के ज्यादा करीब था और मधोक इसे वामपंथी झुकाव के रूप में देखते थे या इंदिरा गांधी के विचारों से समानता मानते थे। 1973 में मधोक को जनसंघ के अंदर किनारे कर दिया गया और वे नाराज हो गए।

उन्होंने पार्टी के नेताओं, खासकर वाजपेयी पर तीखे हमले किए लेकिन किसी विरोधी दल में नहीं गए। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के संस्थापकों में से एक मधोक एक दशक पहले 96 वर्ष की आयु में गुमनाम मौत मरे। 2010 में दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि इंदिरा गांधी ने उन्हें 1980 में मंत्री पद की पेशकश की थी लेकिन एक स्वयंसेवक होने के नाते वह इस लोभ में नहीं आए।

बाद में हमने कल्याण सिंह, उमा भारती और बीएस येदियुरप्पा जैसे पूर्व मुख्यमंत्रियों की बगावत देखी लेकिन वे सभी लौट आए। ऐसे नेताओं में केवल एक ने ही थोड़ी कामयाबी हासिल की लेकिन वे टिके नहीं। वाघेला ने 1995 में भाजपा के 47 विधायकों के साथ बगावत की थी और केशुभाई पटेल और नरेंद्र मोदी पर आरोप लगाया

था कि इन लोगों ने उन्हें पार्टी में दरकिनार किया। वाघेला कांग्रेस के सहयोग से एक साल तक मुख्यमंत्री रहे। बाद में उन्होंने अपने गुट का कांग्रेस में विलय कर दिया। वह उसके टिकट पर दो बार सांसद चुने गए और 2004 में केंद्रीय कपड़ा मंत्री बने। इसके बाद धीर-धीरे वे कमजोर पड़ते गए। आज 85 साल की उम्र में वे अलग- थलग जीवन जी रहे हैं।

भाजपा और वाम दल लंबे समय तक सत्ता से बाहर रहते हुए भी एकजुट मुलायम सिंह यादव द्वारा स्थापित समाजवादी पार्टी आश्चर्यजनक रूप से इस मामले में उनके समान ठहरती है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद ओबीसी- मुस्लिम वोट बैंक वाली सभी पार्टियों में से यह सबसे ज्यादा टिकाऊ रही है। इसकी विचारधारा काफी स्पष्ट है और अखिलेश यादव ने अपने वोट बैंक का भरोसा बनाए रखा है।

जिस राजनीतिक शक्ति को इस पर मंथन करना चाहिए वह कांग्रेस है। इतने सारे क्षेत्रीय दल मसलन टीएमसी, राकांपा, वाईएसआरसीपी आदि इससे ही अलग हुए हैं। इसके अपने नेता लगातार अवसर खोजते रहे हैं। यह स्पष्ट है कि समय के साथ सत्ता ही इसकी मुख्य विचारधारा बन गई। जब सत्ता चली गई तो इसके कई नेता भी चले गए। अन्य क्षेत्रीय दलों की बात करें जिनमें टीएमसी और उद्धव ठाकरे की शिवसेना शामिल हैं तो ये बस एक परिवार वाली पार्टियां थीं। जब परिवार वोट जीतने में असफल रहा, तो ये टूट गईं। अकाली दल का पतन भी इसी में निहित है कि धार्मिक विचारधारा में डूबा हुआ दल एक पारिवारिक उद्यम बन गया। अब तक भाजपा ने अपनी वैचारिक बुनियाद को बनाए रखा है। इसमें अक्सर असहमति होती है लेकिन विद्रोह नहीं शाखा संस्कृति का दबाव, कैडर और आरएसएस के बीच गुरु-शिष्य संबंध इसे एकजुट रखता है। इसने कई वंशवादी नेताओं को अपने साथ जोड़ा और कुछ अपने भी तैयार किए लेकिन सत्ता की बागडोर विचारधारा के प्रति पूरी तरह समर्पित घरेलू नेताओं के हाथों में ही रही है। इसने सत्ता में एकता बनाए रखी है और पिछले छह दशकों से ऐसा ही होता आ रहा है।

जनसत्ता

Date: 22-06-26

तापमान का संकट

संपादकीय

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक ताप को लेकर दुनिया भर में हुए वैज्ञानिक अध्ययनों में दी गई चेतावनियों को शायद कभी गंभीरता से नहीं लिया गया है। कागजों में भले ही कई तरह के कार्यक्रमों और योजनाओं का खाका तैयार किया गया है, लेकिन जमीनी स्तर पर इन्हें प्रभावी तरीके से लागू करने की तत्परता नजर नहीं आती है। यही वजह है कि वैश्विक ताप लगातार बढ़ता जा रहा है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन की ओर से हाल में जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि एशिया क्षेत्र में वर्ष 1991 से 2025 के दौरान तापमान वृद्धि दर 1961 से 1990 की तुलना में लगभग दोगुनी रही। इसमें वर्ष 2025 अब तक के सबसे गर्म वर्षों के रूप में उभरा है। इसके नतीजतन प्राकृतिक आपदाओं में तेजी आई है, जिससे न केवल आर्थिक, बल्कि मानवीय क्षति भी बढ़ोतरी हुई है। सवाल है कि आखिर पर्यावरण संरक्षण के जरिए जलवायु परिवर्तन को रोकने के उपायों को लेकर हर स्तर पर लापरवाही क्यों बरती जा रही है ?

गौरतलब है कि जलवायु विशेषज्ञ पहले भी एशिया सहित पूरी दुनिया में बढ़ते तापमान को लेकर सचेत करते रहे हैं। अगर तापमान को स्थिर नहीं रखा गया, तो इसके नतीजे दूरगामी और भयावह हो सकते हैं । विश्व मौसम विज्ञान संगठन की रिपोर्ट से पता चलता है कि एशिया के अधिकांश हिस्सों में औसत तापमान बढ़ रहा है। ऐसे में भारत समेत क्षेत्र के अन्य देशों को सजग होने की जरूरत है। इस रिपोर्ट को इसलिए भी गंभीरता से लेने की जरूरत है, क्योंकि इसमें बताया गया है कि वर्ष 2025 के दौरान एशिया के लगभग सभी समुद्री क्षेत्रों में भीषण लू चली। स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव कई लू देशों पर पड़ा है। पूर्वी और पश्चिमी एशिया से लेकर दक्षिण एशिया में बढ़ती प्राकृतिक आपदाएं जन-जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर रही हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए न केवल सरकारी, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी गंभीरता से प्रयास करने की जरूरत है। अगर समय रहते कारगर कदम नहीं उठाए गए, तो निकट भविष्य में जलवायु संकट एक ऐसी चुनौती बनकर सामने खड़ा होगा, जिससे निपटना आसान नहीं होगा।

Date: 22-06-26

खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता का सवाल

अभिषेक कुमार सिंह

जब जापान भारतीय आमों की खेप लौटा देता है, सीमा पर नेपाल ट्रकों को रोक देता है चीन भारतीय चावल पर सवाल उठाता है और यूरोपीय संघ बार-बार भारतीय खाद्य उत्पादों में खतरनाक अवशेषों की मौजूदगी की चेतावनी देता है, तब यह मान लेना भूल होगी कि समस्या केवल निर्यात से जुड़े किसी पहलू की है।

असल दिक्कत हमारी थाली, हमारे खेत, हमारे घर और हमारी नियामक व्यवस्था से जुड़ी है। दुनिया भारतीय खाद्य उत्पादों को खारिज कर रही है, तो उसके लिए विभिन्न देशों के खान-पान से जुड़े नियम जिम्मेदार हैं। ये घटनाएं साबित करती हैं कि विकसित देशों से लेकर नेपाल जैसे अपेक्षाकृत गरीब देश की सरकार को भी अपने नागरिकों की सेहत की चिंता है। यह सवाल हमारे लिए ज्यादा बड़ा होना चाहिए कि क्या हम खुद अपने भोजन और परिवेश की सुरक्षा को लेकर गंभीर हैं?

भारत कृषि प्रधान देश है। हम इस पर गर्व भी करते हैं। अरसे से दुनिया भर के बाजारों और घरों में अपनी पैठ बना चुके भारतीय मसाले, चावल, चाय, फल और सब्जियां केवल व्यापारिक वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा रही हैं। सदियों पहले भारतीय मसालों ने यूरोपीय देशों को आकर्षित किया था। इस सांस्कृतिक पहचान का तकाजा था कि हमारे आम को फलों का राजा कहा गया और बासमती ने विश्व बाजार में अलग पहचान बनाई, लेकिन आज वही गुणवत्ता के सवालों से घिरे दिखाई दे रहे हैं।

हर बार जब ऐसा कोई मामला सामने आता है, तो बहस दो ध्रुवों में बंट जाती है। एक पक्ष कहता है कि दूसरे देश भारतीय उत्पादों को बदनाम करने की साजिश कर रहे हैं। दूसरा पक्ष इसे भारतीय व्यवस्था की विफलता बताता है। सच्चाई शायद इन दोनों के बीच कहीं है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में प्रतिस्पर्धा और राजनीति दोनों होती हैं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि यदि हमारे उत्पाद लगातार विभिन्न देशों की प्रयोगशालाओं में असफल पाए जा रहे हैं, तो समस्या की गंभीर जांच आवश्यक है।

कई बार जिन रसायनों की मौजूदगी विदेशी एजेंसियां बताती हैं, वे ऐसे पदार्थ होते हैं जिन्हें दुनिया के अनेक देशों में खतरनाक माना जा चुका है। क्लोरपाइरीफॉस जैसे कीटनाशकों को कई देशों ने प्रतिबंधित कर दिया है। एथिलीन ऑक्साइड को कैंसरकारी माना जाता है। सीसा, पारा और कैडमियम जैसी भारी धातुएं मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा हैं। यदि इनकी उपस्थिति हमारे खाद्य उत्पादों में बार-बार सामने आ रही है, तो यह केवल व्यापारिक नुकसान का विषय नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य का भी सवाल है।

भारत में खाद्य सुरक्षा की चर्चा अक्सर तभी तेज होती है, जब कोई देश आपत्ति उठाता है। तब जांच समितियां बनती हैं, नमूने लिए जाते हैं और बयान जारी होते हैं। मगर यह पूछने वाला कोई नहीं होता कि यदि वही उत्पाद भारतीय बाजार में बिक रहे थे, तो उनके बारे में पहले क्यों नहीं सोचा गया?

जहां तक फल-सब्जियों और अन्य खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों की उपस्थिति की बात है, तो इससे जुड़ी स्थिति के लिए केवल किसान जिम्मेदार नहीं हैं। जब खाद्य उत्पादों में अवशेष पाए जाते हैं, तो सबसे पहले उंगली किसानों पर उठाई जाती है। जबकि वास्तविकता कहीं अधिक जटिल है।

खेत से लेकर उपभोक्ताओं की थाली तक की पूरी आपूर्ति श्रृंखला में अनेक चरण होते हैं -भंडारण, परिवहन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और वितरण। किसी भी स्तर पर होने वाली लापरवाही उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए आम आदि फलों को पकाने के लिए उपयोग किए जाने वाले कुछ रसायन या भंडारण के दौरान संक्रमण रोकने वाले पदार्थ भी गुणवत्ता संबंधी समस्याओं का कारण बन सकते हैं। यदि कोई रसायन किसी उत्पाद में पाया जाता है, तो उसका स्रोत केवल खेत नहीं, बल्कि आपूर्ति श्रृंखला का कोई दूसरा चरण भी हो सकता है। इसलिए दोषारोपण की राजनीति से अधिक आवश्यक है वैज्ञानिक जांच और जवाबदेही की संस्कृति।

भारत की सबसे बड़ी चुनौती नियमन की प्रभावशीलता है। हमारे पास कानून हैं, प्रयोगशालाएं हैं, निरीक्षण तंत्र है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या वे पर्याप्त हैं? क्या देश के हर हिस्से में उत्पादों की नियमित और पारदर्शी जांच हो रही है? क्या जांच के परिणाम सार्वजनिक किए जाते हैं? क्या उपभोक्ता को यह जानने का अधिकार है कि कौन-सा उत्पाद मानकों पर खरा नहीं उतरा?

आज आवश्यकता केवल नियम बनाने की नहीं, बल्कि भरोसा पैदा करने की है। यदि किसी उत्पाद की पूरी यात्रा यानी खेत से बाजार तक डिजिटल रूप से दर्ज हो, तो समस्या का स्रोत पहचानना आसान होगा। दुनिया के अनेक देशों में ऐसी व्यवस्थाएं विकसित हो रही हैं। भारत को भी इस दिशा में गंभीरता से आगे बढ़ना चाहिए।

इसके साथ ही हमें खाद्य सुरक्षा के प्रश्न को केवल निर्यात तक सीमित नहीं रखना चाहिए। अक्सर देखा गया है कि जो उत्पाद विदेश भेजे जाते हैं, उनकी गुणवत्ता पर अधिक ध्यान दिया जाता है, जबकि घरेलू बाजार अपेक्षाकृत कम निगरानी में रहता है। यह दृष्टिकोण बदलना होगा। भारत के नागरिकों को वही गुणवत्ता और सुरक्षा मिलनी चाहिए, जिसकी अपेक्षा विदेशी उपभोक्ताओं के लिए की जाती है।

समाधान केवल अधिक रसायनों में नहीं, बल्कि बेहतर विज्ञान में है। उपभोक्ताओं की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब तक नागरिक केवल कीमत देखकर उत्पाद खरीदेंगे और गुणवत्ता या सुरक्षा के सवाल नहीं पूछेंगे, तब तक बाजार पर दबाव नहीं बनेगा। विकसित देशों में उपभोक्ता संगठन और नागरिक समूह खाद्य सुरक्षा के मुद्दों पर लगातार सक्रिय रहते हैं।

भारत में भी ऐसी जागरूकता का विस्तार होना चाहिए। किसी मसाले या फल के निर्यात पर प्रतिबंध लगने की खबर कुछ दिनों तक सुर्खियों में रहती है, फिर गायब हो जाती है। लेकिन उसके बाद क्या हुआ? जांच का परिणाम क्या निकला? दोषी कौन था? सुधारात्मक कदम क्या उठाए गए? इन सवालों पर शायद ही कभी निरंतर निगरानी दिखाई देती हो। लोकतंत्र में जवाबदेही तभी संभव है, जब लोग सवाल करते रहें।

आखिरकार, यह मुद्दा केवल व्यापार, कृषि या स्वास्थ्य का नहीं है। यह भारत की विश्वसनीयता का प्रश्न है। हम दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाले देशों में हैं। हम वैश्विक खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में बड़ी भूमिका निभाना चाहते हैं। हम कृषि निर्यात बढ़ाने की बात करते हैं, लेकिन वैश्विक बाजार में सफलता केवल उत्पादन से नहीं, विश्वास से मिलती है।

यदि हमारी नीतियां केवल निर्यात बढ़ाने पर केंद्रित रहें और गुणवत्ता सुनिश्चित करने पर नहीं, तो हम बार-बार ऐसे संकटों का सामना करेंगे। आज जरूरत है कि हम पूरे मुद्दे को चेतावनी की तरह लें। खेतों से लेकर रसोई तक, भंडारण से लेकर निर्यात तक और घरेलू कीटनाशकों से लेकर खाद्य सुरक्षा मानकों तक, हर स्तर पर व्यापक पुनर्विचार की आवश्यकता है।

यह केवल सरकारी एजेंसियों का काम नहीं, बल्कि किसानों, उद्योगों, वैज्ञानिकों और उपभोक्ताओं सभी की साझा जिम्मेदारी है। अन्यथा, हम यह भ्रम पालते रहेंगे कि हम कीटों और संक्रमणों के खिलाफ युद्ध जीत रहे हैं, जबकि धीरे-धीरे अपने ही स्वास्थ्य और अपनी ही साख को नुकसान पहुंचा रहे होंगे।